International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 332-334

भारतीय राजनीति में बहिर्वेशन का यथार्थ एवं दलित – एक अध्ययन?

चन्द्रजीत सिंह यादव
शोध छात्र, गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
भारतीय संविधान में समानता का अधिकार प्रत्येक नागरिक को संवैधानिक रूप से प्रदान करता है वहीं दूसरी तरफ संरचनात्मक रूप से भारतवर्ष में सदियों से क्रमबद्ध जातीय असमानता व्याप्त है। जिसका संजीता उदाहरण हिन्दू वर्ण व्यवस्था है। भारत देश को हिन्दूस्तान भी कहा जाता है, यानि यह हिन्दू प्रधान देश है। भारतीय समाज में बहुजातीय/प्रजातियाँ पायी जाती है, जिनमें महिलाएं, दलित एवं आदिवासी समुदाय हाशिये पर स्थित पाये जाते है। इन वर्गों की असमान प्रस्थिति का कारण तत्कालीन न होकर ऐतिहासिक है। उपरोक्त वर्गों में से दलित वर्गों की स्थिति अत्यंत सोचनीय है क्योंकि हिन्दू वर्ण व्यवस्था के चार वर्णों में से इन्हें सबसे निचला स्थान प्राप्त है और इन्हें अपवित्र माना जाता है। यानि ऐसा वर्ग समुदाय जिसके छूने मात्र से उच्च वर्ग का व्यक्ति स्वयं को अछूत व अस्पृश्य समझे उस जन समुदाय को दलित वर्ग कहा जाता है। संवैधानिक रूप से इन जातियों को अनुसूचित जाति कहा जाता है। इनके नाम को सरकारी अनुसूची में सूचीबद्ध किया गया है तब ही यह विभिन्न प्रकार के सकारात्मक कार्यवाही एवं संरक्षण का लाभ प्राप्त करने के योग्य होते हैं।

मूल शब्दः दलित एवं आदिवासी, भारतीय संविधान, भारतीय समाज

प्रस्तावना
भारत एक समानता व संस्कृति प्रधान देश रहा है हजारों वर्षों तक इस देश में बाहरी शासन का प्रभुत्व रहा फिर भी एकता में अनेकता की विशेषता इसमें विद्यमान रही है। भारत पर विदेशी शक्तियों का चाहे जितना प्रभाव पड़ा हो परन्तु आंतरिक मन से आज भी विशेषताएं हैं, जिसमें से हिन्दू वर्ण व्यवस्था इसकी आधारशिला है। भारत की सांस्कृतिक व्यवस्था अनोखी है परन्तु हिन्दू वर्ण व्यवस्था कि आंतरिक सोपानबद्धता ने अनेक असमानता को उत्पन्न किया है। सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि दक्षिण एशिया के प्रत्येक देश में धर्म, जाति, नश्ल, भाषा, व क्षेत्रीय भिन्नता के आधार पर असमानता को देखा जाता रहा है। दक्षिण एशिया में महिला, आदिवासी व दलित ऐसे समुदाय हें जिनका शोषण वर्षों से होता चला आ रहा है। इन समुदायों में से दलित वर्ग एक ऐसा समुदाय है जिसका शोषण व उत्पीड़न सदियों से प्रत्येक क्षेत्र में होता आ रहा है। दलित समुदाय का शोषण व उत्पीड़न सदियों से प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या फिर धार्मिक हो। भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलित समुदाय के लिए अनेक विकास के कार्य किये गये परन्तु इनको सामाजिक प्रस्थिति को सम्मानजनक प्राप्त करने में वर्षों लग गये वर्तमान में भी इन्हें कटु शब्दों का सामना करना पड़ता है। भारत के अन्य धर्म–इस्लाम, सिख, इसाई, बौद्ध धम्र में भी दलित समुदाय पाया जाता है। परन्तु इनमें असमानता का स्तर उतना नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। असमानता का यह दृश्य, भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। दलित वहिर्वेशन सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक रूप से अधिक देखने को मिलता है।

हमारे देश में जाति, धर्म, नस्ल और भाषा विभेदता का आधार मख्य रूप से बने हुए हैं। इन विविधतापूर्ण समाजों में बहिर्वेशन एक प्रमुख सामाजिक समस्या बना हुआ है। जो राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया है, जो एक ही राज्य में कुछ नागरिकों के लिए असमानता व घृणास्पद व्यवहार उत्पन्न करे। बहिर्वेशन का स्वरूप सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक हो सकता है। जब राज्य या कोई नागरिक समूह संस्कृति या भाषा के आधार पर किसी नागरिक या नागरिक समूह को दबाता है या घृणा करता हे तो उसे सांस्कृतिक बहिर्वेशन कहते है। नागरिकता सम्बन्धी किन्हीं अधिकारों से वंचित करना राजनीतिक तथा किसी विशेष कार्य/रोजगार से वंचित करने को आर्थिक बहिर्वेशन कहते है। राज्य द्वारा धर्म के आधार पर स्वतन्त्रता एवं समानता से वंचित करना धार्मिक बहिर्वेशन कहलाता है।

भारत में प्रत्येक व्यक्ति को लोकतांत्रिक व्यवस्था के द्वारा प्रदान संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भी समाज के कुछ विशेष वर्ग वंचना का शिकार रहते है। अधिकार देने मात्र से इन समस्याओं का अंत नहीं हुआ असल समस्या व्यक्तियों के समावेशन की प्रक्रिया में थी। दलित (अनुसूचित), आदिवासी (अनुसूचित जनजाति), महिलाएं एवं अल्पसंख्यक समुदाय भारतीय समाज की एक बड़ी जनसंख्या शक्ति है, जिन्हें बहिर्वेशन का सामना करना पड़ता है।

स्वतंत्रता भारत का संविधान भारत को 'एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य' घोषित करता है। लोकतंत्र की स्थापना हेतु समावेशन की प्रक्रिया को अपनाने एवं बहिर्वेशन को समाप्त करने की बहुत आवश्यकता है। इसीलिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की स्थापना, सभी को नागरिक अधिकारों की उपलब्धता, मानव गरिमा की पुनर्स्थापना तथा सभी को न्याय एवं विकास का अवसर उपलब्ध कराने की बात कही गई है। भारतीय संविधान सामाजिक न्याय की संकल्पना को लागू करने का लक्ष्य रखता है। सामाजिक न्याय का अर्थ यह है कि सामाजिक जीवन में सब मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाये। धर्म, जाति, क्षेत्र, वंश, लिंग या त्वचा के रंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ, किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो, शिक्षा एवं विकास के अवसर सभी को समान रूप से तथा आसानी से उपलब्ध हों और मानव मात्र के रूप में उन्हें समाज की सभी सुविधाओं एवं साधनों का उपभोग करने का अधिकार है।

भारत में सभी वर्ग समुदाय के नागरिकों को एक ही धारा में समाहित करने के लिए सभी नागरिकों को मूल अधिकार उपलब्ध कराये गये है। भारतीय संविधान कानून के समझ प्रत्येक नागरिक को समान अवसर एवं स्वतंत्रता प्रदान करता है। संविधान सभी व्यक्ति को जाति, लिंग, धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के भेदभाव के बिना समान अवसर प्रदान करता है (अनुच्छेद 16, 17) मुख्य रूप से महत्वपूर्ण है। इस अनुच्छेद का सहारा लेकर दलित व पिछड़े वर्ग अपने अधिकारों की मांग करते हैं और उच्च वर्ग के व्यक्ति इन नियमों का पालन भी करते है क्योंकि पालन नहीं करने पर दण्डनीय सजा का प्रावधान है।

अस्पृश्यता एक आमनवीय प्रथा है, जिसने दलित जातियों को सदैव सामाजिक रूप से निम्नतम पायदान पर होने का अहसास कराकर उनमें कुंठा एवं हताशा की भावना पैदा की। इस घृणित प्रथा के आधार पर दलित जातियों को सार्वजनिक जीवन में सहभागिता से वंचित रखा जाता था। नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से संविधान (अनुच्छेद 46) राज्य को निर्देश देता है कि वह भारत में सभी नागरिकों के लिए समान कानूनी प्रावधान बनाये गये हैं परन्तु व्यावहारिक रूप से समानता कि अवधारणा में भारी अंतर है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि दलित समुदाय के मानवाधिकारों का उल्लंघन करके उनके साथ सामाजिक भेदभाव का व्यवहार किया जाता है।

शिक्षा किसी भी समाज और व्यक्ति के विकास का मूल साधन होता है। शिक्षा व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करता है। एक शिक्षित राज्य में ही लोकतंत्र का सफल विकास होता है। शिक्षा किसी भी राज्य की उत्पादन क्षमता का विकास करती है, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति प्रभावकारी रूप से होती है। भारत देश में 74.04 प्रतिशत कुल साक्षरता दर है और उसमें से दलित जातियों का अनुपात 66.1 प्रतिशत है। दलितों की लगभग आधी आबादी निरक्षर है। इस प्रकार भारत में शिक्षा कि स्थिति असन्तोषजनक है। निरक्षरता सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के लिए हानिकारक है। मानवाधिकार और अपनी स्थिति को सम्मानजनक प्राप्त करने के लिए शिक्षा पर विशेष बल देने कि आवश्यकता है। डॉ0 भीम राव अम्बेडकर ने दलित समुदाय को शिक्षित करने के लिए अनेक कॉलेज की स्थापना की उनमें से कुछ इस प्रकार है– पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी एवं सिद्धार्थ कालेज ऑफ आर्ट एण्ड साइंस। दलित छात्रों के लिए आरक्षण का प्रावधानं किया गया है इसके बावजूद भी शिक्षा के स्तरों में दलित छात्रों की भागीदारी संतोषजनक नहीं है। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण आज भी 80 प्रतिशत छात्र माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई छोड़ देते है। शिक्षा एवं साक्षरता दोनों क्षेत्रों में जब तक विकास नहीं होगा तब तक दलित वर्ग का उत्थान कठिन है।

भारत में अस्पृश्यता एवं जाति व्यवस्था सिर्फ साहित्य और पुराणों के माध्यम से ही नहीं जाना जाता बल्कि यह व्यक्तियों के दिन–प्रतिदिन के क्रिया–कलापों में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कानून द्वारा अस्पृश्यता की समाप्ति एवं दण्डनीय अपराध घोषित करने के बाद भी यह असमानता देखने को मिलता है। ग्रामीण इलाकों में यह अभी भी कई अन्य रूपों में प्रचलन में है। तमिलनाडु प्रदेश में हुए एक सर्वेक्षण में यह स्पष्ट हुआ है कि अस्पृश्यता विरोधी कानून, शिक्षा के प्रसार एवं आधुनिक जीवन के दबाव के कारण अस्पृश्यता के रोग ने नये रूप धारण कर लिये हैं जैसे– कुछ गाँवों में डाकियों द्वारा दलितों के घर डाक न पहुँचाना, सार्वजनिक परिवहन की बसों को उनके बस्तियों में बने स्टापों पर न खड़ा करना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली में उनसे सप्ताह के एक विशेष दिन में आकर राशन ले जाने को कहना, दलित बच्चों को कक्षा में अलग बैठाना, दलित छात्रों को उनकी जाति के नाम से पुकारना, सवर्ण जाति के बच्चों के साथ उन्हें पानी न पीने देना इत्यादि शिक्षित एवं आधुनिक समझे जाने वाले समाज के लोग भी अस्पृश्यता का व्यवहार करते पाये जाते है। ये घटनायें शिक्षित व्यक्तियों द्वारा सामाजिक समानता को स्वीकार न कर पाने को दर्शाती है। ऐसी सामाजिक स्थिति में देश में लोकतंत्र की मजबूती की आशा कैसे की जा सकती है?

दलितों के लिए मंदिरों में प्रवेश का प्रश्न अस्पृश्यता की समाप्ति एवं उनके साथ हो रहे सामाजिक भेदभाव के अन्त से व्यापक रूप से जुड़ा हुआ है। मंदिर प्रवेश अनुसूचित जातियों के सामाजिक न्याय की मांग का एक प्रमुख मुद्दा रहा है। अपने जीवनकाल में अम्बेडकर ने इस मुद्दे पर कठिन संघर्ष किया था। जनवरी 2009 में ओडीसा के भद्रक जिले के अराडी गाँव के मंदिर में राज्य की महिला एवं बाल कल्याण मंत्री प्रमिला मल्लिक जब पूजा–अर्चना करके वापस लौटी तो वहाँ के पुजारियों ने बकायदा उस मंदिर का शुद्धिकरण किया। यह ध्यान देने की बात है कि वहाँ पर दलितों को मंदिर में जाने का हक नहीं है और श्रीमती मल्लिक दलित समुदाय से हैं। यह अंदाज लगाया जा सकता है कि इस तरह की स्थितियों में उन लोगों पर क्या गुजरती होगी जिन्हें या तो मंदिर में घुसने लायक नहीं समझा जाता या फिर उनके जाने के बाद 'शुद्धि' कर्मकांड किये जाते है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार सन् 2011 में भारत में दलितों के खिलाफ अपराध के कुल 33719 मामले दर्ज किये गये भारत में दलितों का सामाजिक वहिर्वेशन बहुत व्यापक रहा है। जून 2008 में आंध्रप्रदेश के तिरूपति के विश्व प्रसिद्ध भगवान वेंकटेश्वर मंदिर के प्रशासन ने पहली बार अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को मंदिर में पूजा का अधिकार देने का निर्णय लिया।

भारतीय संविधान नागरिकों को अन्य नागरिक अधिकारों के साथ ही धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है। अगर मंदिर में जाकर पूजा–अर्चना करने के मामले में किसी तरह का भेदभाव किया जाए तो धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार कहाँ रह जायेगा? स्पष्ट है कि भारत में दलितों को धार्मिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार से परोक्ष रूप से ही सही, वंचित रखा गया है। यह उनके मानवाधिकारों के हनन का गंभीर मामला है। यह उनकी सामाजिक एवं मानसिक मुक्ति के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। सामाजिक एवं धार्मिक भेदभाव के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय समाज अभी भी 'मानवमात्र की समानता' की भावना को हृदय से स्वीकार नहीं कर पाया है। इस प्रक्रिया से धर्म परिवर्तन का अनुपात तेजी से बढ़ता है। 1956 में डॉ0 अम्बेडकर के साथ उनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म धारण किया। इस आरक्षण की व्यवस्था के बाद भी बहिर्वेशन कि समस्या व्याप्त है और प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में इनका प्रतिनिधित्व बहुत कम संख्या में है।

सैद्धांतिक व व्यावहारिक धरातल में बहुत अधिक अंतर बना हुआ है। निजी क्षेत्रों में तो अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व और भी कम है। इसीलिए कुछ राजनीतिक दल जैसे– लोक जनशक्ति पार्टी, इंण्डियन जस्टिस पार्टी (उदित राज) इत्यादि, जो कि मुख्यतः अनुसूचित जातियो के समर्थन पर टिकी है और इनके लिए सामाजिक न्याय की मांग का समर्थन करती है, निजी क्षेत्र में भी आरक्षण की मांग कर रहे है। परन्तु वर्तमान समय में उदितराज भाजपा से दिल्ली के सांसद हैं और लोजपा एन0डी0ए0 गठबन्धन में शामिल है, जिससे उनकी आवाज दब गई है। इस वर्ग के विकास के लिए इन्हें आरक्षण प्रदान करने के साथ ही इसके क्रियान्वयन पर नजर रखने के लिए विशेष निगरानी तंत्र बनाने की भी आवश्यकता है जिससे ये आरक्षण के लाभ को व्यवहार में प्राप्त

कर सकें और अपना सामाजिक–आर्थिक स्तर ऊँचा उठा सकें। दलित जातियों में बहुत बड़ी संख्या भूमिहीन मजदूरों की है। उनका अधिकांश भाग निम्न श्रेणी के कार्यों को करता है और उत्पादन के स्रोतों जैसे– भूमि, जंगल और पानी आदि पर उसका नियंत्रण प्रायः नहीं के बराबर है। भूमि सुधारों, भू–स्रोतों के पुनर्वितरण के वैधानिक प्रयास लागू नहीं हो पाए है। यद्यपि कानूनी भूमि स्वामित्व इनकी कुछ आबादी को मिला है परन्तु इसके बावजूद उन पर बहुत से लोगों का वास्तविक कब्जा नहीं हो सका है।

संयुक्त राष्ट्र विश्व सामाजिक स्थिति रिपोर्ट 2010 के ऑकड़ों में यह दर्शाया गया कि भारत में दलित और दलित महिलाएं बड़ी संख्या में अलाभप्रद है। इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति दयनीय है। संयुक्त राष्ट्र ने 1981–2005 कि कालावधि के सुधार पर बताया कि दलित जाति के लोगों कि आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। शर्मिला रेगे ने दलित महिलाओं कि दशा और स्थिति को उन्हीं की जुबानी सुना और उसका लिखित प्रमाणीकरण करके बताया कि इन महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कष्टों की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। इन समस्याआं को दूर करने के लिए राज्य व केन्द्र द्वारा प्रभावकारी कदम उठाने होंगे।

निष्कर्ष

केन्द्र व राज्य सरकारें इन असमानताओं को समाप्त करन के लिए नित–प्रतिदिन विकास व कल्याणकारी योजनाएं बना रही है परन्तु इसका कुछ खास असर नहीं पड़ रहा हे, क्योंकि असमानता तो मानसिक स्तर पर उत्पन्न है। जातीय आधार पर दलित महिलाओं के साथ अत्याचार व दुराचार किया जाता है। शैक्षणिक संस्थाएं भी इन भेदभाव व असमानता के विचारों से अछूती नहीं रही। राजनीतिक क्षेत्र में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है और जिन व्यक्तियों का चुनाव किया जाता है वह उच्च वर्ग के लोगों के हाथ की कठपुतली मात्र बनकर रह जाते है। गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, भेदभाव का दबाव भी बराबर बना रहता है। सरकार को निचले स्तर पर लागू करने वाली योजनाओं को बनाना चाहिए जो व्यक्तियों के विचार को परिवर्तित करें। उदारीकरण, वैश्वीकरण और धर्मनिरपेक्षता में विश्वव्यापार के द्वार खोल दिये हैं और लोगों के मस्तिष्क में पहले कि अपेक्षा परिवर्तन आया है, परन्तु ग्रामीण आंचलों में भेदभाव की प्रक्रिया आज भी देखी जाती है।

संदर्भ

1. फड़नीस, उर्मिला एवं रजत गांगुली, एथनिसिटी एंड नेशन–बिल्डिंग इन साउथ एशिया, सेज पबिल्केशन, नई दिल्ली, संस्करण 2001,
2. काजमी, फरीद, ह्यूमन राइट्स : मिथ एण्ड रिअलिटी, इंटिलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1987
3. कुमार, विवेक, शिक्षा के दायरे में दलित, दैनिक जागरण, 26 दिसम्बर, 2007, वाराणसी,
4. वेबस्टर, जॉन सी0बी0, द दलित सिचुएशन इन इण्डिया टुडे, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ फ्रन्टियर मिशन, स्प्रिंग 2001,
5. कुमार, विवेक, शिक्षा के दायरे में दलित, दैनिक जागरण, 26 सितम्बर, 2007, वाराणसी,
6. एस0 सन्तोष एंड जोशिल के0 अब्राहम, कास्ट इनजस्टिस इन जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 2010
7. नो एस0सी0/एस0टी0 प्रोफेसर इन जे0एन0यू0, डी0यू0 डिस्पाइट प्रमोशन कोटा, टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 10 सितम्बर, 2012
8. क्राइम इन इण्डिया : 2011 स्टैटि्सटिक, नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, नई दिल्ली,
9. पनिक्कर, के0एन0, आइडेंटिटी एण्ड पॉलिटिक्स, फ्रेंटलाइन, 2011